वहाबी मत का सत्य

लेखक : आयतुल्लाहिल उज़मा सय्यदुल उलमा मौलाना सै0 अली नक़ी नक़वी
सम्पादन : नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन

क़िस्त : (9)

और ज़ियारत के बाद जो दो रकात नमाज़ पढ़ी जाती है उसके बाद कहा जाता है किः–

"ऐ ख़ुदा! मैंने यह दो रकात नमाज़ पढ़ी है भेंट करने के लिए आप के मौला (स्वामी) तेरे खास वली तेरे रसूल[स०] के भाई अमीरूल मोमिनीन[अ०] (मोमिनों/आस्तिकों के प्रमुख) अली सुपुत्र अबूतालिब के लिए, ए ख़ुदा! तू दरूद (वरदान) भेज मुहम्मद[स०] पर और इस नमाज़ और ज़ियारत को स्वीकार कर और इस पर मुझे वह बदला प्रदान कर जो कर्म की अच्छाई (सच्चाई/श्रेष्ठता) रखने वालों को प्रदान होता है। ऐ ख़ुदा! मैंने तेरे लिए ही नमाज़ पढ़ी है और तुझी को सजदा (खण्डवत) किया है, तू एक अकेला है तेरा कोई साझी (समभागी) नहीं है, इसलिए कि नमाज़, और रूकू (झुकना नमाज़) और सजदे बस तेरे ही लिए हो सकते हैं क्यों कि तेरे अतिरिक्त कोई भगवान नहीं। ऐ ख़ुदा! मुझे मेरा उद्दश्य/ध्येय प्रदान कर मुहम्मद[स०] और मुहम्मद[स०] की सन्तान के वास्ते से। इससे साफ़ होता है कि इन पाक पुण्य स्थलों पर जाने (दर्शन) नमन से तौहीद की बुनियादें और ज़्यादा मज़बूत होती हैं मुसलमान का एकीकरण होता है कुफ़्र नास्तिकता के विचार मलयामेट होते हैं। इसके खिलाफ़ ज़हेर घोला जाता है और आरोप जगाये जाते हैं उसका सहीह बदला तो ख़ुदा के हाथ में है जब कि इस बे बुनियाद ख्याल से कितने बेगुनाहों का खून बहाया जाता है। उनका मान हानि होता जा रहा है जो वहाबी भूमिका में जुड़ा लगातार साबित है।

नवाब सिद्दीक़ हसन खाँ क़न्नौजी ने "अब्जदुल उलूम" में लिखा है कि अल्लामा शौकानी के शिष्य शैख मुहम्मद हाजी ने इब्ने अब्दुल वहाब के बारे में लिखा है कि मुहम्मद बिन अब्दुल वहाब की कुछ बातें क़ुबूल की जा सकती हैं और कुछ रद्द कर देने के लाएक़ हैं। और उनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध दो बातें हैः एक तो सारे मुसलमानों को काफ़िर कहना और दूसरे बिना किसी सबूत व गवाह के मुसलमानों का खून बहाना।

दूसरे स्थान पर लिखा है कि वहाँ के जाहिल अरबों को उन्होंने समझाया कि पैग़म्बर या किसी आलिम से जो तवस्सुल करे, वह मुषरिक हो जाता है और आगे बढ़कर उन्होंने सारे मुसलमानों को काफ़िर ठहरा दिया इसीलिए मुहम्मद बिन इस्माईल जो बहुत बड़े आलिम थे, ने इब्ने अब्दुल वहाब के बारे में किसी जानकारी से तारीफ़ में कुछ शेर कहे और बाद में जब उन्हें सही हालात मालूम हुए तो उन्होंने तौबा के तौर पर दूसरे शेर कहे और एलान किया कि मैंने तारीफ़ के जो शेर लिखे थे उन्हें मैं वापिस लेता हूँ और स्वयं अपने उन दूसरे शेरों की व्याख्या 'महबुल हौवफ़ी शरहि अबियातित्तौबा' के मानी गुनाह मिटाना तौबा वाले शेरों की व्याख्या भी की। इसमें उन्होंने लिखा है कि पहले एक नजदी आलिम ने आकर अब्दुल वहाब की बड़ी सराहना की थी जिसपर मैंने वह शेर कहे किन्तु बाद में मुझे इब्ने अब्दुल वहाब की बहुत सी आपत्ति जनक बातें मालूम हुई जैसे खून ख़राबा, लूटमार, धोखे से खास लोगों का वध (टार्गेट किलिंग) और पूरी धरती के मुसलमानों को काफ़िर ठहराया जाना और इस सम्बन्ध में इब्ने अब्दुल वहाब की कुछ पुस्तिकाएँ लेख हम तक पहुँचे जिनमें उन्होंने सारे मुसलमानों के खुद के विचार से काफ़िर होने के तर्क दिये है तो

हमने उसे ऐसा पाया जैसे कोई आदमी शरीयत का थोड़ा सा इल्म (ज्ञान) हासिल करे ओर उसने ग़ौर फ़िक्र से काम न लिया हो और न किसी उस्ताद से पढ़ा हो जो उसे सीधा रास्ता दिखाए उसने तो इब्ने तैमिया उनके शिष्य और इब्ने क़य्युम की कुछ किताबें पढ़ ली और उनकी अंधी तक़लीद की है जबकि ये दोनों खुद तक़लीद को हराम क़रार देते हैं।

सैयिद मुहम्मद अमीन बिन उमर उर्फ़ इब्ने आबिदीन ने अपनी किताब 'रद्दुल मुख्तार' के तीसरे भाग में बुग्ग़ात के अन्तर्गत लिखा है ''जैसा कि उस ज़माने में इब्ने अब्दुल वहाब के चुलों में हुआ जिन्होंने नज्द से विद्राह किया और दो हरम (मक्का और मदीना) पर कब्ज़ा जमा लिया। ये लोग हंबली होने का दावा करते थे पर ये विश्वास धारा कि बस वह मुसलमान हैं और उनके विरोधी जितने है सब मुशरिक़ है और उस तरह सुन्नियों और उनके उलमा की हत्या को जायज़ समझा यहाँ तक कि खुदा ने उनके बल को तोड़ा और उनके शहरों को बरबाद किया और 1233 हि0 में मुसलमान उन पर वर हुए।

वहाबी आलिम सुलैमान इब्ने अब्दुल्लाह बिन मुहम्मद बिन अब्दुल वहाब ने अपनी किताब "तैज़ीह" में लिखा है किः "तौहीद वालों के लिए इन मुसलमानों के माल और औरतें सब हलाल हैं (उनका माल ले सकते है और उनकी औरतों से दुष्कर्म कर सकते हैं सब सही होगा।) और वह उन्हें दास दासियाँ बना सकते हैं।"

वास्तव में यही ख़ारजियों का दीन रहा है जिन्होंने हज़रत अली और उनके साथी सभी मुसलमानों को काफ़िर कहा और उनकी जान व माल को हलाल समझा। ध्यान दें वहाबियों के विचार इन्हीं ख़ारजियों से मिलते हैं और उनके सहपन्थी हैं। जैसे कि वे यह नारा लगाते थे "हुकम (फैसला) बस अल्लाह के लिए है" यह वाक्य सही था मगर इसका उद्देश्य ग़लत था। इसी तरह उनके और भी नारे थे कि ताज़ीम सम्मान केवल अल्लाह की, दुआ भी अल्लाह से माँगी जाये, मुहब्बत केवल अल्लाह से, ये सभी वाक्य सही हैं मगर इनसे मक़सद ग़लत निकाला हैं। फ़िर इतिहास के अध्यन से पता चलता है कि ख़ारजियों के सभी बड़े लोग नज्दी थे इसी तरह जंग से उनका सेना नायक (कमाण्डर) शब्स बिन रब्ई और एक बड़ा सरदार मुसइर बिन फ़दकी दोनों तमीमी थे और मुहम्मद बिन अब्दुल वहाबी भी तमीमी कबीले से हैं। वहाबी गुट का खारजी फ़िरके से होने को शैख़ मुहम्मद बिन यूसुफ़ ने अपनी किताब अल–हिस्नु वल जुन्ना अला अक़ीदति अहलिस्सुन्ना' में खोला। वह लिखते हैं "आजकल यह मान्सिकता चल पड़ी है कि औलिया के करामात (चमतकार) का इन्कार किया जाता है और उनकी क़ब्रों की ज़ियारत को मना किया जाता है और उनके साथ अल्लाह के यहाँ तवस्सुल नकारा जाता है। यह वास्तव में ख़ारजियों का मज़हब था। उनका विश्वास था कि जिसने क़ब्र की ज़ियारत की तो जैसे उसने बुतपरस्ती (मूर्ती पूजा) की।" और यह सब ग़लत है। इसलिए कि स्वयं रसूल[स] क़ब्रों की ज़ियारत को जाते थें ऐसे लोगों से बहस करना बेकार है।

आलूसी जो "तरीख़ेनज्द" के लेखक हैं, हालांकि स्वंय वहाबियत की ओर झुकाव रखते हैं जो उनके लेखन से प्रकट है लेकिन उनके क़लम से भी थोड़ी बहुत सच बात निकल जाती है। उन्होंने सऊद बिन अब्दुल अज़ीज़ के हाल में लिखा है कि उन्होंने अपनी फ़ौजें हर ओर भेंजी और अरब के बड़े बड़े लोगों का सिर उनके सामने झुक गया मगर उन्होंने हज को रोक दिया और मुसलमानों के ख़लीफ़ा का विद्रोह किया और अपने मुख़लिफ़ विरोधी मुसलमानों को काफ़िर ठहराने में हदसे बढ़ गये और कुछ हुक्मों में बड़ी अति से काम लिया और उन्होंने कई बातों (जैसे खुदा के हाथ चेहरा, आखें आदि) के सामने के अर्थों को लिया। हाँ दूसरे लोग उनके विरोध में भी हद से बढ़ गये। न्याय चाहता है कि बीच का रास्ता अपनाया जाय, न इतना कड़ाई होना चाहिए जैसा नज्द के उलमा और जनता में है कि वे मुसलमानों से युद्ध

का नाम जिहाद रखते हैं और हज को रोकते हैं और न इतना ढीला होना चाहिए जो आम तौर पर शाम और इराक़ के निवासियों में पाया जाता है कि अल्लाह के सिवा दूसरों की क़समें खाते हैं और क़ब्रों पर सोने चाँदी की सजावट और रंग बिरंग बेल बूटे वाली इमारतें (भवन) बनाते हैं, और उनके लिए नज़्र करते हैं इन बातों को शरीअत मना करती है। सार यह है कि धर्म के बारे में कमी या हद से बढ़ना कोई पहलू मुसलमानों को नहीं जँचता बल्कि उचित यह है कि पहले के नेक लोगों (सदाचारियों) का अनुपालन किया जाए। और एक दूसरे को काफ़िर कहना खुदा के ग़ज़ब (प्रकोप) का कारण है।

जब यह साबित हो गया कि ये लोग सारे मुसलमानों को काफ़िर कहते हैं तो अब सहीह बुख़ारी में रसूल[स०] की हदीस देखिए कि:

"जो किसी को काफ़िर कहे तो अगर वह मुसलमान काफ़िर न हो तो कहने वाला काफ़िर ठहरे।"

इसके अतिरिक्त यह भी पहले आ चुका कि ये लोग खुदा को जिस्म वाला (साकार) मानते हैं और यह विश्वास रखने वाला उलमा के विचार से काफ़िर है। फ़िर रसूल[स०] के अहलेबैत से दुष्मनी जिसे पैग़म्बर ने कुफ़्र के बराबर कहा है। फिर खारिजियों के कुफ़्र पर सभी उलमा एकमत हैं यहाँ तक कि इब्ने अब्दुल वहाब की किताब "अत्तौहीद" की व्याख्या करने वाले ने भी लिखा है कि: रसूले खुदा ने ख़ारिजियों के लिए गवाही दी है कि वे बहुत अधिक नमाज़, रोज़ा और कुरआन पाठ के काम करते होंगे और "ला इला–ह–इल्लल्लाह" का कलमा (बोल) पढ़ते होंगे उसके बावजूद काफ़िर माने जायेंगे। हज़रत ने फ़रमाया कि अगर मैं उस ज़माने में हूँ तो उन्हें क़त्ल करूँ जैसा कि सहीहैन (दो 'सहीह' सहीह बुखारी व सहीह मुस्लिम) में है।

फ़िर ख़ारजी जिस प्रकार मुषरिकों के बारे में जो आयतें हैं उन्हें मुसलमानों पर लागू करते उसी प्रकार वहाबी जो आयत मुश्रिकों के बारे में है उन्हे जंग के मुसलमानों पर लागू करते हैं जैसा कि इब्ने अब्दुल वहाब ने इस बारे में पूरा एक रिसाला लिखा है। जिसका नाम कशफ़ुश्शुब्हात फ़ित्तश्कीक बिल मुतशाबिहात है इसमें बड़े विस्तार के साथ उन शिर्क वाली आयतों को मुसलमानों पर लगाने की कोशिश की है और उसकी ख़बर भी रसूल[स०] ने दे दी थी जैसा कि बुख़ारी ने अपनी सहीह में खारजियों के विषय में अब्दुल्लाह बिन उमर से रिवायत (बात दोहराना) की है कि उन्होंने उन आयतों को जो काफ़िरों के बारे में हैं, मोमिनों के बारे में ठहरा दिया और इस सम्बन्ध में एक रिवायत इब्ने उमर जिसे बुख़ारी ने और दूसरों ने लिखा है कि रसूले खुदा ने फ़रमाया "सबसे अधिक मुझे अपनी उम्मत के लिए जो परेषानी है वह उस व्यक्ति से जो कुरान की आयतों को बेमौक़ा लागू करें (सन्दर्भ से अलग अर्थ निकाले)। इसको ईब्ने दहलान ने बयान किया है और जिस तरह ख़ारजियों ने मुलमानों का ख़ून जायज़ समझ लिया था और ख़ून अकारण और निरर्थक बहाना जायज़ समझा था उसी तरह इन वहाबियों ने अनगिनत मुसलमानों का ख़ून बहाया। "कष्तुल इयाब" में है कि इन लोगों के हाथों से जो मुसलमान क़त्ल (वध) हुए उनकी गिनती एक लाख से अधिक है, और ताएफ़ में इन्होंने पनाह शान्ति के समझौते के बावजूद क़त्लेआम (नर संहार) किया, हालांकि अल्लाह ने फ़रमाया है कि: "जो किसी एक मोमिन को क़त्ल करे वह ऐसा है जैसे उसने सारे इन्सानों को क़त्ल किया।

वहाँ वह लोग जिन्होंने लाखों मुसलमानों को क़त्ल किया है, रसूल ने फ़रमाया कि मुसलमान को गाली देना फ़िस्क़ (दुष्चरित्र होना) है और उसे क़त्ल करना कुफ़्र है। "इसे इब्ने माजा ने अपने 'सुनन' में दर्ज किया है। और अल्लाह का इरषाद है: "जो एक मोमिन को क़त्ल करे उसकी सज़ा नरक है जिसमें वह हमेषा हमेशा रहेगा और अल्लाह का क्रोध उस पर होगा और अल्लाह

उस पर लानत/फ़िटकार करेगा और उसे बड़ा अज़ाब करेगा।

पाँचवा अध्याय

वहाबियों के विचार नबियों और महापुरूषों की क़ब्रों के बारे में

उनका धर्म यह है कि क़ब्र पर किसी भी प्रकार का निर्माण करना हराम है और ना ही उनके घेरे में कोई इमारत बनाना चाहिए और वहाँ दुआ माँगना और नमाज़ें पढ़ना सब हराम है। बल्कि उन सबको गिराना और मिटा देना वाजिब है। यहाँ तक कि हज़रत[स] की कब्र के लिए भी यही आदेश है। इब्ने अब्दुल वहाब और उसके मानने वालों के अनुसार यह सब निर्माण मूर्तियों की तरह हैं और हज़रत[स] की मज़ार को वे सबसे बड़ी मूर्ति समझते हैं।

इन सब बातों में उनके सरदार वही इब्ने तैयमिया और इब्ने क़य्युम हैं। अतः इब्ने क़य्युम ने अपनी किताब "ज़ादुल्मआद फ़ी हुदय खैरुल इबाद" में कहा है कि जहाँ तक बस हो गिराना वाजिब है और उनका एक दिन भी बाक़ी रखना हराम है। इसलिए कि यह लात और उज़्ज़ा (अरब में पूजी जाने वाली दो मूर्तियाँ के नाम) की तरह है बल्कि उनसे बढ़ कर यहाँ षिर्क होता है और समय के हाकिम के लिए ज़रूरी है कि वह उस धन और माल को जो रौज़ों के लिए लाया जाता है लेकर दूसरे कार्यो में खर्च कर दे जैसा कि हज़रत[स] ने लात के धन और माल के साथ किया। इसी प्रकार उन निर्माण को गिराना अनिवार्य है या उनको बेचकर उनकी कीमत मुसलमानों के हित के कामों में खर्च कर दें। इसी प्रकार उनकी जागीरों को जो उनके लिए वक़्फ़ हैं। इसलिए कि उनके लिए वक़्फ़ हराम है और यह धन जो ख़राब हो रहा है अतः उसे ख़र्च कर देना चाहिए।

और दूसरे भाग में लिखा है कि हज़रत[स] ने मस्जिदे ज़रार को तोड़ दिया तो ये मज़ार की जो इमारतें हैं क्यों छोड़ दी जाएंगी और अच्छे कार्य के खिलाफ़ जागीरें देना सही नहीं है। और वह मस्जिद भी जो किसी क़ब्र पर हो उसे गिरा देनी चाहिए जिस प्रकार उस मुर्दे को जो मस्जिद में दफ़्न हो क़ब्र खोदकर निकाल देना चाहिए क्योंकि इस्लाम धर्म में मस्जिद और क़ब्र दोनों इकट्ठे नहीं हो सकते बल्कि जो पहले हो वो सही है और जो बाद में हो उसे रोका जाए।

अब यहाँ उचित लगता है कि नज्द के क़ाज़ी इब्ने बलहीद के फ़तवे और उस उत्तर को जो मदीने के उलमा के नाम लगा कर जन्नतुलबक़ी को गिराने के लिए प्रकाषित हुआ था यहाँ लिखा जाता है जिससे उनके विश्वास इस बारे में बिल्कुल सामने आ जायेगा। आते हैं बाद में हम उन दोनों लेखों की उचित काट करेंगे।

सवाल

क्या कहना है मदीने के उलमा (खुदा उनकी समझ और ज्ञान में ज़्यादती करे) का क़ब्रों पर निर्माण करने और उन्हें मस्जिद बनाने के बारे में, ये जायज़ है या नहीं? और जबकि वह गलत है और कड़ाई से उसे मना किया गया है तो क्या उनका गिराना और उनके पास नमाज़ पढ़ने से रोकना वाजिब है? और जब वह इमारत एक दान की हुई (वक़्फ़ की) भूमि पर हो जैसे बक़ीअ और वह रोकती हो उतना भर लाभ उठाने से जिस पर इमारत है तो क्या यह ग़स्ब (अनुचित ग्रहण/हड़पना) है जिसका अन्त करना ज़रूरी है ताकि दूसरे अधिकार रखने वालों पर अत्याचार न हो उनके अधिकार न मारे जाएँ या ये अनिवार्य नहीं है? और जो कुछ जाहिल लोग इन ज़रीहों के पास करते है कि उनको छूकर अपने मुँह पर मलते हैं और अल्लाह के साथ–साथ उनसे प्रार्थना करते हैं और क़ब्र वाले के पास होने का मन करते हैं और उसकी नज़्र (मनौती) मानते हैं और वहाँ प्रकाष करते हैं। यह सब ठीक है या नहीं? और जो यह लोग रसूल[स] के कक्ष के निकट करते हैं कि प्रार्थना आदि के समय उस ओर मुँह करते हैं और तवाफ़ (परिक्रमा– चारों

ओर घूमना) करते हैं और चूमते हैं और छू कर अपने तन पर लगाते हैं इसी प्रकार जो पवित्र मस्जिद में करते हैं अज़ान और इक़ामत के बीच में और जुमे की नमाज़ से पहले उन्हें याद करते हैं और खुदा की उनपर रहमत माँगते हैं क्या ऐसा शरीअत (धर्म विधी) में है या नहीं?

सवाल की ग़लती बल्कि ग़लत बयानी

इस प्रष्न में एक बड़ी ग़लत बयानी है कि बक़ीअ की ज़मीन वक़्फ़ है और यह इमारतें अधिकार वालों को उनके अधिकार से वंचित रखती हैं इसलिए उनका हटाना वाजिब है और इसका समर्थन कल्पना पर शाफई के कथन से होगा जो 'किताब अलअम' में है कि क़ब्र की इमारत यदि वक़्फ़ की हुई भूमि पर बनाई जाए तो उसका गिराना वाजिब है। ये ग़लत है इसलिए कि इतिहास व सीरत (रसूल की जीवनी) की किताबों से पता चलता है कि बक़ीअ की इमारतें किसी वक़्फ़ की भूमि पर नहीं है बल्कि निजी भूमि पर बनी हैं। अतः 'वफ़ाउलवफ़ा' में रसूल[स] के पुत्र इब्राहीम की क़ब्र के बारे में लिखा है कि ये एक घर था जो बाद में मुहम्मद बिन ज़ैद बिन अली के स्वामित्व (मिल्कियत) में आया फिर इसी क़ब्र के निकट उस्मान बिन मज़ऊन और फिर यहीं अब्दुर्रहमान बिन औफ़ की क़ब्र बनी। ये सब एक कुब्बे (गुम्बद) में थे। इससे पता चलता है कि कुब्बा स्वामित्व की भूमि में था। फिर रसूल[स] की पत्नियों का कुब्बा वह जो अक़ील बिन अबूतालिब के स्वामित्व में था। इसका भी बयान वफ़ाउलवफ़ा में है। अब रहा अहलेबैत अलैहिमुस्सलाम का कुब्बा तो सीरत की किताबों से पता चलता है कि ये जनाबे अब्बास बिन अब्दुल मुत्तालिब का कुब्बा था। अतः सवाएकुल मुहर्रेक़ा अल्लामा इब्ने हजर मक्की में इमाम मुहम्मद बाक़िर[अ] के बारे में है कि वह अपने पिता के पहलू (बग़ल) में दफ़्न हैं इमाम हसन[अ] और अब्बास के कुब्बे में, जो बक़ीअ में है। और अब्बास के कुब्बे के लिए लेखकों ने लिखा है कि अक़ील के घर के कोने में था अतः शाह अब्दुल हक़ मुहद्दिस देहलवी अपनी किताब "जज़बुलकुलूब इला दयारिल महबूब" में लिखते हैं

"अब्बास बिन अब्दुल मुत्तलिब को भी फ़ातिमा बिन्ते असद बिन हाषिम के कुब्बे के निकट बनी हाषिम के मक़बरों के शुरू में जो अक़ील के घर के कोने में है दफ़्न किया।"

इससे पता चला कि यह कुब्बा भी स्वामित्व की भूमि पर था। और अल्लामा सय्यद इब्राहीम रावी रिफ़ाई ने अपनी किताब "अवराक़े बग़दादिया" में लिखा है कि इमाम शाफ़ई का कुब्बा इब्ने अब्दुल हेकम के घर में था। रह गई बक़ीअ की भूमि तो उसका वक़्फ़ की भूमि होना प्रमाणित नहीं। इसके अलावा उन बयानों के जो पहले इस भूमि के स्वामित्व में होने के बारे में लिखे जा चुके हैं बीती हुई शताब्दियों में लगातार उलमा का इस बात पर आपत्ति न करना भी बताता है कि उनके अनुसार इन कुब्बों में से कोई ग़लत नहीं था और मुसलमानों के हर युग में उनका निर्माण व मरम्मत की ओर ध्यान रखना उनके निकट यह सही होने का सबूत है अगर और वहाबी बहुत ही धाँधली से काम लेकर उन ऐतिहासिक बयानों को ना मानें जो उनकी भूति के विभिन्न लोगों के स्वामित्व होने को बताते है, जबकि यह न्याय से बहुत दूर है इसलिए कि ऐतिहासिक घटनाओं में इतिहास कारों के बयान पर विश्वास को छोड़ कर कोई रास्ता नहीं है। फिर भी जब इतिहास व हदीस में इसका पता नहीं है कि पहले इस भूमि का मालिक कौन था और उसने उसे वक़्फ़ किया तो समझना होगा कि वह पहले ही की स्थित में रही है कि सारी भूमि अल्लाह की है और सबके लिए मुबाह (वैध) है और उसकी आज्ञा है कि जो कोई भूमि के टुकड़े को अलग करके कोई इमारत बना ले, वह उससे खास हो जाएगी। फिर किसी को उसका तोड़ना गिराना ठीक (जायज़) नहीं होगा।

ये थी वो ग़लती और ग़लतबयानी जो इस प्रष्न में थी और वो प्रष्न किसी साधारण आदमी

का नहीं बल्कि एक बड़े वहाबी व्यक्ति का था अर्थात् उनके सबसे बड़े क़ाज़ी का था। अतः उस पर नज़र डालना ज़रूरी था। अब उसका उत्तर जो मदीने के उलमा के नाम से जोड़कर नज्दी सरकार से प्रकाशित किया था लिखा जाता है।

उत्तर

क़ब्रों पर इमारत बनाने के लिए इजमा (सर्वसम्मति) है कि ग़लत है। इसलिए कि इसकी मनाही में जो हदीसें हैं वह सही सनद (दुहिराने वालों के क्रम) की हैं। अतः बहुत से उलमा ने फ़त्वा दिया है कि इनका गिराना वाजिब (अनिवार्य) है। और इसमें वो सनद (प्रमाण में) लाते हैं हज़रत अली[अ] की हदीस कि आपने अबुल सियाज से कहा कि मैं तुम्हें उस महत्वपूर्ण काम के लिए भेजता हूँ जिसके लिए हज़रत[स] ने मुझे भेजा था कि जो मूर्तियाँ तुम्हें मिलें उन्हें मिटा दो ओर जो क़ब्र ऊँची मिले उसे समतल कर दो। इसको मुस्लिम ने रिवायत की (दोहराया) है। और क़ब्रों पर मस्जिद बनाना और वहाँ नमाज़ पढ़ना बिल्कुल मना है। और वहाँ दिया जलाना भी मना है। इब्ने अब्बास की हदीस के कारण कि हज़रत[स] ने लानत की उन औरतों पर जो क़ब्रों की ज़ियारत की वजह से जाएं और उन लोगों पर जो वहाँ मस्जिद बनाएं और दिया जलायें। इसकी रिवायत अहले सुन्नत ने की है। जाहिल लोग जो ज़रीह के साथ तमस्सुह (छूकर अपने जिस्म आदि से मलना) करना हैं और उनसे निकट होने के लिए जानवर कुरबान करते हैं और नज़्र (मन्नतें) मानते हैं और अल्लाह के साथ उन क़ब्र वालों से प्रार्थनाएँ करते हैं ये सब हराम है और शरीयत (ध ार्म विधि) से मना है जिसका करना बिल्कुल ठीक नहीं और प्रार्थना के लिए रसूल[स] के कक्ष की ओर मुहँ करना तो इसे भी रोका जाए तो अच्छा है जैसा कि प्रसिद्ध धार्मिक किताबों में है और सब दिषाओं से अच्छी दिषा काबे की है। और परिकम्रा (तवाफ़) लगाना आदि यह सब बाद की बनाई हुई चीज़ें है जो मेरी अधूरी समझ में आयी हैं वह यह है कि हर जानने वाले से बड़ा एक जानने वाला है।

25 रमज़ान सन् 1344 हिजरी

उत्तर की काट

मदीने के उलमा के इस फ़त्वे की काट अल्लामा सय्यद हसन सदर और अल्लामा शैख जवाद बलाग़ी आदि ऐसे बड़े उलमा ने की है। मगर यहाँ उसके एक टुकड़े की पूरी रद लिखी जाती है।

पता होना चाहिए कि क़ब्रों पर निर्माण के जायज़ होने का सबूत अल्लाह की किताब, रसूल[स] की सुन्नत (सदाबृत्ति) और मुसलमानों के चलन से मिलता है। अल्लाह की किताब में उस समय के वर्णन में जब लोगों को पता चला और वह लोग उस गुफ़ा के निकट आए जहाँ असहाबेकहफ़ (गुफ़ा वाले) आराम कर रहे थे, ये आयत है कि

"उन सबने कहा कि उन पर एक इमारत ख़ड़ी करो। उन्होंने जो उनके इस बारे में ग़ालिब हुए(छा गए) कहा कि हम इस पर मस्जिद का निर्माण करेंगे।"

बात कहने के तरीक़े से लगता है कि अल्लाह ने मुसलमानों के उस फैसले को जो उन्होंने किया अच्छे काम के रूप में अंकित किया है और कुरआने मजीद में, सामने है, पहले के नबियों और क़ौमों (समुदायों) का जो वर्णन है मन मौजी के लिए अंकित नहीं बल्कि इस लिए कि इससे उम्मत को कुछ सबक़ मिले अगर अल्लाह के निकट मस्जिद बनाना उस पर गलत होता तो अल्लाह इस घटना को बताने में ज़रूर चेतावनी देता ताकि उम्मत ऐसे कामों से बचे। जब ऐसा नहीं हुआ और उसने इस बात को इस प्रकार बताया तो इससे इसके सर्मथन का सबूत हुआ और यह खुला कि यह फ़ैसला उसकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ नहीं है और इस लायक़ है कि उम्मत के लोग उस पर चलें और वास्तव में अगर इस आयत के अलावा कोई सबूत न हो तो भी ये आयत उसके प्रमाण काफ़ी थी। मगर ये वहाबियों के विचार के बिल्कुल खिलाफ़ है।